भारतीय साहित्य : अवधारणा और जीवन-मूल्य

रवीन्द्रनाथ मिश्र

साहित्य और जीवन-मूल्यों का बड़ा गहरा सम्बन्ध है। जीवन-मूल्यों की स्थापना से ही साहित्य अपने समय को लाँघकार कालजयी बनता है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में मूल्यों के सर्जन और क्षरण का क्रम जारी रहता है जिसे हम जीवन और साहित्य के विभिन्न आयामों में देख सकते हैं। उदाहरणस्वरूप मार्क्स की समाजवादी अवधारणा ने तो शाश्वत मूल्यों की अस्मिता पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया। उनके अनुसार तो 'भौतिक जीवन में रोजी-रोटी कमाने, उत्पादन की पद्धति और उसमें व्यक्ति की स्थिति महत्वपूर्ण होती है। उसी से जीवन-मूल्य बनते हैं। जीविकोपार्जन में अर्थ यानि पूँजी का महत्व सर्वाधिक है। वही हमारे मूल्यों, मान्यताओं, स्थितियों और मान-मर्यादाओं को अर्थ और मूल्य देता है। अस्तित्व एवं फ्रायडवादी विचारधारा ने भी भारतोय साहित्य को प्रभावित किया परिणामस्वरूप शाश्वत मूल्यों को ठेस पहुँची। आजादी के बाद तो सत्ता की राजनीति एवं अन्य सामाजिक कारणों से साहित्य और जीवन-मूल्यों में काफी बदलाव आया। सत्ता, राजनीति, मीडिया, बाजारवाद, भूमंडलीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी आदि के कारण साहित्य एवं मूल्यों की अवधारणाओं, मान्यताओं में बदलाव आया। फलस्वरूप परम्परागत शाश्वंत मूल्यों को जबरदस्त धक्का लगा है। आज नई और पुरानी पीढ़ी के विचारों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई है। मूल्यविहीन समाज का युवा वर्ग गुमराह हो रहा है। उसे शाश्वत मूल्यों की अस्मिता की पहचान कराना जरूरी हो गया है क्योंकि इसके बगैर आचरण की शुद्धता नहीं आ सकती।

यहाँ संक्षिप्त रूप से साहित्य और जीवन-मूल्य के स्वरूप पर विचार कर लेना समीचीन होगा। 'हितं संपादयति इति साहित्यम्' अर्थात् साहित्य शब्द में हित का भाव निहित है। साहित्य अथवा जीवन में लोकहित साधन का अर्थ है, अपने अनुभव, विचार और दृष्टिकोण को व्यापक बनाना अर्थात् व्यष्टिगत रागद्वेष की सीमा से ऊपर उठकर, सार्वभौमिक स्तर पर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा और मानवता के प्रसार के लिए संकल्प की भावना से कार्य करना। आचार्य हजारीप्रसाद के शब्दों में कहें तो "जो साहित्य मनुष्य समाज को अज्ञान, रोग, शोक, दारिद्र्य और परमुखोपेक्षिता से बचाकर उसमें आत्मबल का संचार करता है, वह निश्चय ही अक्षय निधि है।"[1] प्रत्येक युग का साहित्य अपने युगबोधीय सौन्दर्य के कारण ही कालजयी होता है। संसार का सौन्दर्य और सह-अस्तित्व विपुलता में नहीं, बहुलता में है। संवेदनशील, सत्य का पक्षधर और मानवीय

मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध रचनाकार ही श्रेष्ठ साहित्य का सर्जन कर सकता है। भारतीय साहित्य-चिन्तन में अन्य बातों के साथ 'शिवेतरक्षतये' को काव्य-प्रयोजनों में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, वहीं प्राचीन यूनानी विचारकों के लिए भी साहित्य की उत्कृष्टता में माना गया है। प्लेटो, अरस्तु आदि के साहित्य सम्बन्धी विचारों से जाना जा सकता है। टालस्टॉय ने तो साहित्य की उत्कृष्टता को नैतिक कसौटी पर परखने के साथ-साथ नैतिक को धार्मिक आस्था से भी जोड़ दिया है। भारतीय साहित्य भी प्रारम्भ से लेकर आज तक अपने विविध रूपों में 'शिवेतरक्षतये' से जुड़ा हुआ है। यही तो साहित्य का प्राणतत्व है।

मैं यहाँ साहित्य की विपुल परिभाषओं की चर्चा न करके इतना ही कहना चाहूँगा कि 'सत्यमेव जयते', 'यतोधर्मस्ततोजयः', 'असतो मा सद्गमय', 'सरसरि सम सब कह हित', 'परहित सरिस धर्म', सर्वे भवन्तु सुखिनः', 'जननी जन्मभूमिश्च', 'सारे जहाँ से अच्छा', 'प्रेम करुणा', सदाचरण, एकता, धृति, क्षमा, दम, चोरी न करना, शौच, इन्द्रिय, नियन्त्रण, बुद्धि, विद्या, सत्य, क्रोध आदि जैसे मूल्य किस भारतीय भाषा के मौखिक और लिखित साहित्य तथा मीडिया में विद्यमान नहीं हैं। मनुष्य की पूरी सभ्यता एवं संस्कृति इन्हीं मूल्यों पर आधारित है। मानव जीवन में 'सत्यम् शिवम् और सुन्दरम' का प्रमुख स्थान है। इसमें 'सत्यम' का सम्बन्ध मनुष्य के सत या अस्तित्व से और 'शिवम' का उपयोगिता से तथा 'सुन्दरतम' का काम या कामना से जुड़ा हुआ है। इनका साहित्य, संगीत और कला से भी गहरा सम्बन्ध है। डॉ. हरदयाल ने मूल्य को परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'मनुष्य अपनी प्रकृत या जैविक अवस्था से ऊपर उठाने के लिए, अपनी मूल प्रवृत्तियों से ऊपर उठकर उनका संस्कार करने के लिए, उन्हें परिष्कृत करने के लिए जिन मानदंडों को अपनाता और उनके अनुसार आचरण करने को ठीक समझता है, उन्हें हम मूल्य कहते हैं।"[2] वस्तुतः जीवन और साहित्य मूल्य, काल के अनुसार बदलते रहते हैं। राजनैतिक क्षेत्र में जनतन्त्र तक, धार्मिक क्षेत्र में सर्वधर्म समभाव तक, सामाजिक क्षेत्र में समानता तक पहुँचने की यात्रा लम्बी और संघर्षपूर्ण है। मूल्य की सापेक्षता देशकाल, व्यक्ति और समाज से सन्दर्भित होती है। 'तैत्तिरीयोपनिषद्' में 'सत्यवंद' की महिमा गाँधीजी तक बराबर गायी गई है। सत्य की महिमा को नकारा नहीं जा सकता, किन्तु वर्तमान सन्दर्भों से आप सभी लोग इससे भली-भाँति परिचित हैं। मूल्यबोध के साथ साहित्य का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्य अपने समय में व्याप्त मूल्यबोध को पूरी ईमानदारी से व्यक्त करता है। इतिहासकारों ने अकबर के शासनकाल को स्वर्णयुग कहा है, लेकिन तुलसीदास ने आम आदमी की दशा का यथार्थ चित्रण किया है।

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख,
बलि, बनिक न बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-विहीन लोग सीद्यमान सोच-बस,
कहैं, एक एकन सों, 'कहाँ जाई, का किरी?''
वेद हू पुरान कही, लोक हू बिलोकियात,
सांकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।[3]

जहाँ तक भारतीय साहित्य का सवाल है तो हम कह सकते हैं, कि यह विविध विचारों, भावों, जीवन मूल्यों, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं, परिवेशगत जीवन दशाओं, समसामयिक युगीन बोधों आदि की चेतना से अनुप्राणित है। उदाहरण स्वरूप वर्तमान दौर के परिवेशगत हलचल, बाजारवाद, मीडिया विस्फोट, नारी एवं दलित विमर्श, मानवीय मूल्यों के क्षरण आदि की चर्चा सभी भाषाओं के साहित्य में हो रही है। यह सही है कि कहीं अधिक तो कहीं कम। रमेश उपाध्याय का मानना है कि, "साहित्य का निर्माण साहित्येतर सामग्री से होता है और अच्छा साहित्य केवल साहित्य पढ़ने से नहीं, बल्कि मानव जीवन को बेहतर तथा अधिक सुन्दर बनाने के उद्देश्य से समाज को बदलने की प्रक्रिया में पैदा होती है।"[4] भारतीय साहित्य विभिन्नता में एकता और एकता में विभिन्नता का साहित्य है यानी कि सबमें दार्शनिक एवं सांस्कृतिक चेतना की समन्वयात्मक धारा का अजस्र स्रोत प्रवाहमान है। इसमें एक तरफ सूर, तुलसी, मीरा, चैतन्य महाप्रभु आदि की आध्यात्मिक भाववादी धारा विद्यमान है तो दूसरी तरफ कबीर, नानक, नामदेव, वेमन्ना आदि की भौतिकवादी प्रगतिशील धारा है। इन दोनों धाराओं के कवियों ने जिन जीवन मूल्यों की स्थापना की है वह युगों-युगों तक भारतीय जनमानस के लिए कंगाल की रोटी

के समान होगी। भारतीय साहित्य के स्वरूप की विवेचना के अन्तर्गत सभी भाषाओं का साहित्य समादृत है। इनके विकास क्रम में वैदिक, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि की चर्चा पृष्ठभूमि के रूप में की जाती है।

भारतीय साहित्य भारत के जनगण की ही तरह विविधता और एकता के परस्पर सूत्रों से बुनी हुई एक सघन इकाई है। जो कि विभिन्न विचारधाराओं, मान्यताओं, कलाओं और जीवन-मूल्यों से अस्तित्व में आती है। प्रभाकर श्रोत्रिय का मानना है कि 'साहित्य के तमाम वैविध्य के बीच एक सूक्ष्म अदृश्य लय संचरित है जो जीवन को एक स्वर-संगति, एक सिंफनी, सहानुभूति दृष्टि, विवेक और गहन अर्थ देती है।''[5] सार रूप में कहें तो भारतीय साहित्य वह गुलदस्ता है जिसमें सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति की महक विद्यमान है। भारतीय साहित्य ने क्षेत्रीय और भाषिक सीमाएँ लाँघकर मानवता और एकता को सुरक्षित रखा है। आज भूमंडलीकरण के दौर में भारतीय साहित्य एक-दूसरे के करीब द्रुत गति से आ रहा है। इस कार्य में अनुवाद की भूमिका बढ़ गई है। इसके लिए साहित्य अकादेमी, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नेशनल बुक ट्रस्ट आदि जैसी संस्थाएँ महनीय कार्य कर रही हैं।

के. सच्चिदानन्द ने अपनी पुस्तक 'भारतीय साहित्य स्थापनाएँ और प्रस्तावनाएँ में लिखा है कि 'भारतीय संस्कृति कोई एकल या अखण्ड संस्कृति नहीं है और न ही भारतीय साहित्य एकालाप है, उसमें अनेक स्वर, अनेक रंग और अनेक विश्वदृष्टियाँ समाहित हैं। प्रधान और उपेक्षित (सबाल्टर्न), श्रेष्ठ साहित्य और लोकप्रिय साहित्य, महान परम्परा, 'मार्जी और देशी, लिखित और मौखिक साहित्य का समानान्तर अस्तित्व भारतीय की परम्परा में सदियों से रहा है और परस्पर एक-दूसरे से आदान-प्रदान करता हुआ, सीखता और सिखाता हुआ।[6]

भारतीय संस्कृति की भाँति भारतीय साहित्य में भी अनेक रंग, अनेक विचार सरणियाँ एवं मानवीय मूल्य दृष्टियाँ समाहित हैं। इसकी परम्परा में सदियों से लिखित और मौखिक साहित्य, लोक-मान्यताएँ एवं परम्पराएँ भी एक-दूसरे को प्रभावित करती आ रही हैं। जैसे कि हमारे पास जितनी भाषाएँ और परम्पराएँ हैं। लगभग उतनी ही रामायणें हैं। 'भारतीय वाङ्मय' के नाम से समस्त भारत के लिए वेद, उपनिषद, पुराण, इतिहास, महाकाव्य, नाटक तथा अन्यान्य ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी साहित्य समादृत रहा है। इसके अतिरिक्त वैदिक भाषा से लेकर संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं में रचित साहित्य भी समस्त भारतीय भाषाओं के लिए प्रेरणा-स्रोत रहा। आठवीं दसवीं सदी तक भारतीय भाषाओं में मौलिक साहित्य की रचना कम हुई है। कालान्तर में भी संस्कृत महाकाव्यों के रूपान्तर का ही कार्य हुआ। गोस्वामी तुलसीदास ने लोकभाषा अवधी में 'रामचरितमानस' की रचना कर राम के शील, शक्ति एवं सौन्दर्य के चारित्रिक गुणों द्वारा सम्पूर्ण जनमानस में मानवीय मूल्यों की स्थापना की। तुलसी के राम ने दलित वर्ग के साथ संघर्ष करते हुए कभी भी जीवन-मूल्यों का परित्याग नहीं किया। लंकाकांड के राम-रावण-युद्ध प्रसंग में मूल्यों की अनुपम व्याख्या की गई है। यहीं पर दूसरे महाकाव्य महाभारत ने भी भारतीय साहित्य को समग्र रूप से प्रभावित करते हुए कर्म का सन्देश दिया। दोनों की गाथा परिवार की हैं लेकिन जहाँ एक में त्याग है तो वहीं पर दूसरे में भोग। एक में मूल्यों की रक्षा पग-पग पर हुई है तो दूसरे में मूल्यों का क्षरण। वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य कुछ मायनों में महाभारत की कहानी को दुहराता हुआ प्रतीत हो रहा है। 'रागदरबारी', 'महाभोज' आदि जैसे उपन्यासों में इसका यथार्थ चित्रण हुआ है।

वाल्मीकि रामायण की कथा को मूल रूप में स्वीकार करते हुए कतिपय फेरबदल के साथ लगभग सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में नहीं अपितु विश्व साहित्य में रामायण की रचना की गई। मध्यकाल के लगभग सम्पूर्ण भारतीय भक्ति साहित्य का सर्जन वेद, पुराण, संस्कृत, नीतिशतक, भर्तृहरिशतक, बौद्ध, जैन आदि के भक्ति एवं शृंगार ग्रन्थों के आधार पर हुआ है। महादेवी वर्मा ने लिखा है 'वेद साहित्य की चिन्तन पद्धति ने यह भारतीय चिन्तन को दिशा ज्ञान दिया है तो उसकी रागात्मक अनुभूति ने भावी युगों की काव्य कलाओं में स्पन्दन जगाया है। प्रकृति से रागात्मक सम्बन्ध, उस पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप, रहस्य को व्यक्त करनेवाली जटिल उक्तियाँ, भक्तिजनित निवेदन आदि बिना कोई संस्कार छोड़े हुए अन्तर्हित हो गए, यह समझना-मानव-चेतना की संश्लिष्टता पर अविश्वास करना होगा।'[7] हमारे मनीषियों, चिन्तकों, दार्शनिकों, धर्म, गुरुओं, पंडितों आदि ने लोककल्याण

एवं आपसी सद्भाव और प्रेम हेतु विभिन्न पर्वों, त्यौहारों, मांगलिक आदि अवसरों पर जिन देवी-देवताओं की उपासना पर बल दिया था वे सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताएँ तथा लोक-परम्पराएँ आज भी 21वीं सदी के उत्कर्ष काल में सम्पूर्ण भारतीय जनमानस की चेतना में विद्यमान हैं। आगे चलकर इन धार्मिक लोक-परम्पराओं में बहुत सारी रूढ़ियों एवं जड़ मान्यताओं का विकास हुआ जिन्हें कि भारतीय साहित्य की विविध विधाओं में रेखांकित किया गया और साथ ही उन्हें श्रव्य एवं श्रव्य-दृश्य मीडिया पर सुना और देखा जा सकता है।

मध्यकाल के भक्ति आन्दोलन ने सम्पूर्ण भारतीय जनमानस को झंकृत किया। फलस्वरूप 15-16वीं सदी के दौरान भक्ति साहित्य का लेखन लगभग सभी भारतीय भाषाओं में हुआ। तमिल में आलवार और नायनार इस दौर के पूर्व हुए लेकिन कन्नड़ में बसवण्णा, पुरंदरदास, कनकदास, सर्वज्ञ, तेलुगू में वेमन्ना, पोतना, त्यागराज मलयालम में एलुतच्चन, पेरुशरी, मराठी में ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास, गुजराती, में नरेश मेहता, प्रेमानन्द, दयाराम, बंगला में चैतन्य महाप्रभु, चण्डीदास, कृत्तिदास, लोचनादास असमिया में शंकरदेव, माधवदेव ओडिया में सारलादास, बलरादास, जगन्नाथदास, अच्युतानन्द, यशोवन्तादास और शिशु अनन्तदास (पंचसखा के नाम प्रख्यात) सिंधी कवि सूफी कवि शाह लतीफ, पंजाबी में नानक, अर्जुन, हिन्दी में कबीर, रैदास, दादूदयाल सूफी कवि जायसी, भक्त कवि सूर, तुलसी, मीरा आदि ने नामदेव, रैदास जिसका मैं नीचे तबकों के सन्तों ने अपनी रचनाओं के द्वारा भारतीय समाज और संस्कृति पर अमिट छाप छोड़ी है। उदाहरणस्वरूप कबीर की भावाभिव्यक्ति जो नाथों-सिद्धों की परम्परा की अगली कड़ी रही है और अपने निम्न वर्ग की व्यवस्था में समाज के पिछड़े वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में रहते हुए भी क्लासिक व दार्शनिक चेतना की भावाभिव्यक्ति बनी। कहना न होगा कि भारतीय साहित्य विभिन्न प्रान्तों, जातियों, उपजातियों, वर्गों, भाषाओं का साहित्य है। सन्तों के एकेश्वरवाद, आदर्श आध्यात्मिक जीवन, सर्वांग विकास हेतु कोई भी साधना पद्धति का चयन तथा अनुभूति, अभिव्यक्ति और आचरण में सामंजस्य सम्बन्धी विचारों में क्रमशः साम्य भाव और विश्वबन्धुत्व का आदर्श, स्वावलम्बन का महत्व, दैनिक जीवन के प्रत्येक व्यापार का समुचित मूल्यांकन और व्यक्तिगत जीवन के विकास आदि जीवन मूल्यों को देखा जा सकता है। इन सन्तों की रचनाओं में एक सांझी संस्कृति का विकास हुआ है।

पूर्व मध्यकाल में जहाँ साहित्य को जीवन-मूल्यों की स्थापना के रूप में देखा गया है वहीं पर उत्तर मध्यकाल को मूलतः कलात्मक सौन्दर्य के लिए जाना जाता है। साहित्य में निहित सौन्दर्यबोध भी शाश्वतता का एक प्रमुख आधार है। सौन्दर्यबोध प्राणिमात्र की जन्मजात प्रवृत्ति है। सुन्दर के प्रति आकर्षण और कुरूप के प्रति विकर्षण का भाव सहज रूप में उत्पन्न होता है। मानवीय सौन्दर्यबोध इतर प्राणियों की अपेक्षा विशिष्ट होता है। रमणीयता के कारण ही साहित्य में अभिव्यक्त श्रद्धा, प्रेम, विस्मय, शोक, क्रोध, घृणा आदि भाव सुन्दर और ग्रहणीय बनते हैं। सौन्दर्यानुभूति अन्तर्वृत्तियों में सामंजस्य स्थापित करके उन्हें परिष्कृत और संस्कारित करती है। परिणामस्वरूप सौन्दर्यानुभूति को व्यापक धरातल मिलता है और कोई खंडित या आंशिक सौन्दर्यानुभूति व्यापक सौन्दर्यबोध से जुड़ जाती है। भागवत सौन्दर्य की भाँति ही कलागत सौन्दर्य पर बल दिया गया और लगभग सभी ने संस्कृत आचार्यों द्वारा स्थापित कला मानदण्डों को आधार बनाया।

भक्ति आन्दोलन के दौरान रचित भारतीय साहित्य को जीवन-मूल्यों की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट माना गया। कालान्तर में पश्चिमी संस्कृति-सभ्यता के प्रभाव, समाज सुधारवाद और स्वाधीनता संग्राम आन्दोलन के कारण एक नवीन विचारधारा एवं राष्ट्रीय चेतना का स्वर फूटा। भारतीय साहित्य में जो देशभक्ति का भाव पैदा हुआ, वह रामायण महाभारत के उस भाव का विस्तार है जिसमें संजय भारत वर्ष का वर्णन करते हैं कि इस देश में गंगा, सिंधु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, वितस्ता, गोमती, कावेरी आदि नदियाँ प्रवाहित हैं और कुरु पांचाल, कोसल, कुलिंद, पुलिंद, आन्ध्र जनपद हैं। आगे कहा गया है कि मनुष्य अपने गुण और शक्ति के अनुसार इस पृथ्वी की सेवा करें, रक्षा करें। यह धरती कामधेनु के समान फल दे सकती है। इसे प्राणों से भी अधिक प्रिय समझकर इसकी रक्षा करनी चाहिए। कालिदास ने 'रघुवंश' और 'कुमारसम्भवम' में यहाँ के देशों, नृपों, वेश-भूषाओं, पर्वों, मांगलिक कार्यों, पर्वतों, नदियों, फूलों, पेड़ों एवं अन्य वन

सम्पदाओं का विस्तार से वर्णन हुआ है। इसके अतिरिक्त विभिन्न देश की सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की झाँकी भी प्रस्तुत की गई है। 'रघुवंश' में राम के पूर्वजों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इन्हीं ग्रन्थों से प्रेरणा लेकर भारतीय साहित्य समृद्ध हुआ है। इनमें राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक, एकता की अद्‌भुत मिसाल मिलती है।

मध्यकाल के भक्ति आन्दोलन की भाँति 19-20वीं सदी के स्वतन्त्रता आन्दोलन ने सम्पूर्ण भारतीय साहित्य को प्रभावित किया। जैसा कि विदित है कि राष्ट्रीयता की अनुगूँज बांग्ला साहित्य के माध्यम से हुई और बाद में उसकी लहर सम्पूर्ण देश में फैल गई। मैं यहाँ कतिपय उदाहरण दक्षिण भाषा साहित्य से देना उपयुक्त समझ रहा हूँ। तेलुगू, बांग्ला, संस्कृत, प्राकृत एवं अंग्रेजी के उद्‌भट विद्वान आचार्य रायप्रोलु सुब्बाराव, गुरुदेव, रवीन्द्रनाथ ठाकुर के समरूप रहे हैं। उन्होंने संस्कृत और तेलुगू में संयुक्त रूप से मातृभूमि का वन्दन किया है।

नमो मंगल श्री महा मातृभूमि, नमो भारत सावित्री ललामे।
नमस्ते हिमाहार्य धम्मिलल्तारा, नमस्ते त्रिवेणी धर श्रीधारा।
वंदन अखंड भारतवर्ष जननी, जननी वंदनम।[8]

कोंकणी भाषा के वरिष्ठ कवि मनोहरराय सरदेसाय की 'आमचो देस आमका जाय' कविता में राष्ट्रीय भावों का उद्‌गार इस रूप में हुआ है–

स्वतन्त्रताय! स्वतन्त्र ताय! आमचो देस आमकां जाय।
संगल्या संसारातं अशी, सोबीत भूंय मेलत काय?
हांच्यो झरी दुदावरी, हांगचे, बोत भांगरा-सरी
हांगा नदर बचत तेंवर, पाँच विचार अप्रुपाय।[9]

दक्षिण भारत के कवियों में सुब्रह्मण्यम भारती ने राष्ट्रीय भावों के उद्‌गार के लिए सम्पूर्ण देश में अपनी अद्‌भुत छवि बनाई है। राष्ट्रीयता ही उनके जीवन-मूल्यों की कसौटी बन गई है।

वन्दे मातरम् एनबोम-एडगल, मानिलन ताये वणड गुदुम एनबोम
जाति मद्‌डगलै पारोम-उयर, जन्मम इदेसत्तिल एयतिनरायिन
वेदिबरायिनुम ओनरे-अनरि, वेरु कुलत्तिनरायिनुम ओनरे।

(अर्थात् हम वन्देमातरम कहेंगे, अपनी जननी जन्मभूमि की वन्दना करेंगे। जाति धर्म को नहीं मानते हम, जो भी जन्म है इस धरा पर, जन्म से ही वह महान, ब्राह्मण हों, अथवा अन्य, सब हैं समान!) मलयालम के प्रसिद्ध कवि वल्लतोल ने अपनी कविता 'एण्डे गुरुनाथन' अर्थात् 'मेरे गुरुदेव' में 'वसुधैव कुटुम्बकम' त्याग और विनय जैसे मूल्यों को बड़े सादगी से व्यक्त किया है।

लोकमे तरवाडु तनिक्की चेडिकलुम,
पुलकलुम पुषुक्कलुम कूडित्तन कुडुंबक्कार,
त्यागमेन्नते, नेट्टम, ताषमा तान आभ्युन्नति,
योगवित्तेवम जयककुन्नु इतेन गुरुनाथन।

(अर्थात् 'यह लोक ही मेरा कुटुम्ब है, ये तृण पल्लव कीट-पतंग ही मेरे परिजन हैं, त्याग ही सम्पत्ति है, विनय ही उन्नति है' ऐसा माननेवाले योग के ज्ञाता मेरे गुरुदेव की जय हो!) कन्नड़ साहित्य में भी तत्कालीन राष्ट्रीय विचारधाराओं की अनुगूँज अन्य कवियों के अतिरिक्त तिरुमले राजम्मा 'भारती' की कविताओं में देखा जा सकता है।

जय भारत भुविगे मातेगे जय पावन मूर्तिगे,
सन्मंगलवागालं सततताम।
देव धर्मावतार गो विप्र हित विचार,
पावन महिला कृतिगे॥[10]

(अर्थात् 'जय भारत भूमि की, जय हो पावन मूर्ति की, सतत् सन्मंगल हो। देव धर्मावतार गोविप्र हित विचार, पावन महिमा कति की।) 1910-20 के आसपास 'गीतांजलि', 'गोरा', 'गोदान', 'चोमन दुडि' (ब.ब. कारंत), 'चेम्मीन' (तकषि शिवशंकर पिल्लै), 'श्रीकांत' (शरतचन्द्र), जैसे श्रेष्ठ भारतीय उपन्यासों और प्रेमचन्द, टैगोर मंटो, बि.स. खांडेकर, वेंकटेश आयंगार की कहानियों तथा इकबाल निराला, फैज़, कुमारन आशान, भारती, नजरुल इस्लाम आदि की कविताओं में श्रेष्ठ परिवर्तित जीवनमूल्यों को देखा जा सकता है।

पाँचवें और छठे दशक में भारतीय साहित्य को शहरी करण, एकान्तबोध, अस्मिता के संकट मोहभंग आदि की स्थितियों से गुजरना पड़ा। यहाँ आकर समाज की चिन्ता गौड हो गई और अपनी प्रमुख। राजनीतिक और सामाजिक

जीवन में मूल्यहीनता का दौर शुरू हुआ। सम्वेदनशील भारतीय लेखकों की मूल चिन्ताएँ जीवन-मूल्यों के क्षरण को लेकर हुईं।

यह सच है कि आजादी के बाद पश्चिमी आधुनिकतावादी के भारतीय साहित्य की 'अखण्ड अनुभूति' को जड़ से हिलाने का प्रयत्न किया लेकिन इसमें उन्हें कामयाबी नहीं मिली। इस सन्दर्भ में तेलुगू के श्री श्री, हिन्दी के निराला, बांगला के नजरुल, मलयालम के बशीर बेक्यम आदि याद आते हैं जोकि पाश्चात्य विचारों से प्रभावित होकर भी अपनी जमीन से जुड़े रहे। गुरपाल सिंह दी लिट्ट की कहानी 'जडों वाले' शहरीकरण द्वारा पारम्परिक परिवार भावना की जड़ों को खोखला कर देने और मनुष्य को खुदगर्ज बना देने पर एक टिप्पणी है। जिनके भीतर मूल्यों की जड़ें मजबूत हैं उन्हें आज की मूल्यहीनता कचोटती है। सेवा, त्याग, सहिष्णुता, आत्मोत्सर्ग जैसे मूल्यों से कुछ हद तक अभी गांवों में बचा है। कोंकणी कथाकार चन्द्रकांत केणी और उदय भेंब्रे की क्रमशः 'अकेला' और 'प्रसाद का फूल' कहानियों में जहाँ एक ओर पहले में हिन्दू-क्रिश्चियन की प्रगाढ़ मित्रता और अपनी मातभूमि के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है वहीं दूसरी कहानी में पुत्र-प्राप्ति की कामना हेतु पूजा-पाठ एवं यज्ञ-अनुष्ठान पर बल दिया गया है। वस्तुतः इस प्रकार की मान्यताओं का जिक्र सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के साहित्य में हुआ है।

सार्वभौम उपभोक्तावाद ने पहले तो कविता, कहानी, उपन्यास, इतिहास आदि साहित्यिक विधाओं पर प्रहार किया है। अब उसकी नजर हमारी जातीय विविधता और विविध संस्कृति पर है। कालान्तर में यह हमारी 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना को आहत करेगा। आज आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय साहित्य को बाजारवाद के खिलाफ आवाज बुलन्द करने की है। समसामयिक दौर में अनन्तमूर्ति (कन्नड़), अबुलबशार (बांग्ला), सुरेन्द्र वर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, कमलेश्वर, दूधनाथ सिंह, शिवमूर्ति, राजी शेठ, मार्कण्डेय आदि (हिन्दी), प्रतिभा राय (ओडिया), नील पद्मनाभन, अंबाई (तमिल), शशिदेशपाण्डे, उपमन्यु चैटर्जी (अंग्रेजी), मुकुन्दन, एम.टी. वासुदेवन नायर, ओ.वी. विजयन (मलयालम), लक्ष्मण माणे, भालचन्द्र नेमाणे (मराठी), पुण्डलीक ना, नायक, महाबलेश्वर सैल (कोंकणी) आदि कथाकारों ने सामाजिक यथार्थ और जीवन-मूल्यों के विविध आयामों की चर्चा की है।

उत्तर-आधुनिक भारतीय साहित्य में गाँव-शहर और अतीत-वर्तमान की दूरी को पाटने के लिए मिथकों, लोक विश्वासों और कथाओं का भरपूर प्रयोग किया जा रहा है। जहाँ ग्राम्य और अतीत हमारी लोक-संस्कृति और शाश्वत जीवनमूल्यों का बोध कराते हैं वहीं पर नगर और वर्तमान नवीन सोच, परिवर्तित जीवन-मूल्यों और युगीन चेतना की, व्यक्ति और समाज के बदलते हुए रिश्ते, परिवर्तित सोच और क्षरण होते हुए मूल्यों ने भारतीय साहित्य के समक्ष एकता और अखण्डता की चुनौती खड़ी कर दी है। इसके ऊपर मीडिया, बाजावाद, सूचना प्रौद्योगिकी आदि का दबाव भी बढ़ता जा रहा है। इन्द्रनाथ चौधुरी के शब्दों को उधार लेकर कहूँ तो "मगर यह भी सही है कि भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य एक ऐसे दृष्टिकोण का निर्माण करता है। जोकि विविधता के प्रत्येक अवरोध को पार कर हमें भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता से परिचित कराता है। एकता-अनेकता जैसे विरुद्धों के सम्पूरक समूह वाले मॉडल से जुड़ी हुई भाषा-साहित्यों के पारस्परिक सम्बन्धों की समस्याएँ भारतीयता के अध्ययन को आधुनिक पाठक के लिए काफी संगीन और अर्थपूर्ण बनाती है।"[11]

भारतीय साहित्य भाषा, को लेकर कभी विभाजित नहीं रहा है। एकाध अपवाद को छोड़कर। विषय-वस्तु, रूप-विन्यास, सरोकार, अनुभव, प्रभाव, दिशा, आन्दोलन आदि को लेकर भारतीय साहित्य में अद्‌भुत समानता रही है। इसके साथ ही वह जीवन-मूल्यों का सदियों से पैरोकार रहा है। उसने परिवर्तित मूल्यों के प्रति हमें सदा से ही आगाह भी किया है। बहुत सारे परिवेशगत बदलावों के बाद भी साहित्य और मीडिया मानीवय मूल्यों की पुरजोर वकालत कर रहे हैं।

अन्त में मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि साहित्य जीवन, समाज और संसार को सम्वेदित और समावेशी दृष्टि से देखता है। वह सदियों से विभिन्न परिवेशों, संस्कृतियों, भाषाओं, विचारों, संरचनाओं के लेखकों आदि की भिन्नता के बावजूद हमारी एकता, अखण्डता और जीवन-मूल्यों की रक्षा करता आ रहा है। आज भी कबीर, तुलसी सूर, मीरा, नानक, नामदेव, वेमन्ना, बसव, शंकर आदि की पंक्तियाँ निराश और हताश जीवन में आशा का संचार करते हुए, टूटते-बिखरते जीवन-मूल्यों को संजोकर रखने का सन्देश भी दे रही हैं।

सन्दर्भ-सूची

1. साहित्य : चिन्तन और सृजन—डॉ. रामजी तिवारी
2. गगनांचल—अप्रैल-जून, 1999
3. तुलसी ग्रन्थावली भाग-2
4. हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकार—रमेश उपाध्याय
5. समय समाज और साहित्य—प्रभाकर श्रोत्रिय
6. भारतीय साहित्य : स्थापनाएँ और प्रस्तावनाएँ
   —के. सच्चिदानन्द
7. संकल्पिता—महादेवी वर्मा
8. कालिदास ग्रन्थावली
9. गगनांचल—जनवरी-मार्च, 2001
10. कोंकणी काव्य-संग्रह-1999
11. आधुनिक भारतीय साहित्य—दक्षिणांचल-इ.ग.मु.वि.